गुरुवाणी

सृष्टि के आरम्भ में मानव मात्र ही नहीं प्राणी मात्र भी एक ही थे। बाद में निहित स्वार्थों द्वारा जाति, कुल, वर्ग, सम्प्रदाय इत्यादि का बंधन लोलुप मानवों द्वारा किया गया।

–पीठाधीश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी

अघोरेश्वर निनाद

अघोरान्ना परो मंत्रो। नास्ति तत्वम् गुरोः परम्।।

R.N.I.UPHIN-2000/3008 Postal No. VSI-E-01/2013-2015

वर्ष-१५, अंक १९, वाराणसी। गुरुवार १५ अक्टूबर २०१५ ई० सहयोग राशि ४.२५

ईश्वर

अनादिकाल से मानव के द्वारा इस धरा पर परमतत्त्व ईश्वर को अनेकों नामों से व्यक्त किया जाता है, जिसमें परमात्मा, भगवान्, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, परमसत्ता, अज्ञात, परमेश्वर, गॉड, खुदा, वाहेगुरु अधिक प्रचलित है। ईश्वर की सत्ता को स्वीकारने एवं उनकी दण्ड विधायिनी शक्ति को ध्यान में रखते हुए जीवन-यापन करने से मानव का जीवन सरल हो जाता है। विशेषकर भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ऋषि-मुनियों द्वारा पाप-पुण्य, फलाफल का ज्ञान देकर सदा सतकर्म पर प्रेरित करते रहने की ही परम्परा रही है। पुण्यात्मा अथवा परमार्थी को ईश्वर के सन्निकट समझा जाता है, उन्हें सदैव से समाज में विपुल सम्मान मिलता आया है, इसी श्रेणी में प्राचीन ऋषि, मुनियों यथा वशिष्ठ, विश्वामित्र से लेकर औघड़ अघोरेश्वर की गणना की जाती है। इनके सानिध्य में बैठने से, इनकी वाणी सुनने, मनने करने से एक अवर्णातीत आनन्द की प्राप्ति होती है। अद्यपि ईश्वर का रूप बहुआयामी है, वह साकार, निराकार रूप में शून्य से लेकर अन्तरिक्ष तक में व्याप्त है, इसीलिये मानव कल्याण के लिये उधृत सरल ग्रन्थ ''सफल योनि'' में ईश्वर को सृष्टि के आरम्भ से आज तक विराजमान होना कहा गया है तथा ईश्वर के समस्त आयामों, उनकी लीला, शक्ति को समझना मानव के मन-मस्तिष्क, बुद्धि एवं वचन के परे बताया गया है फिर भी ऐसा अलौकिक आकर्षण है कि बार-बार मानव मात्र का मन इस अव्यक्त शक्ति को जानने की होती रहती है। ईश्वर आभा को मलिक मुहम्मद जायसी के द्वारा ''पद विनु चलै, सुनै बिनु काना , कर बिनु करम करै विधि नाना'' की उपमा से नवाजा गया है जिसे कबीर दास जी कहते हैं कि ''ज्यों तिल मा तेल है, ज्यों चकमक में आग; तेरा साई तुझ में जाग सकै तो जाग।'' ईश्वर की ही प्राप्ति एवं पता बताते हुए परमपूज्य भगवान अवधूत राम ने अघोर वचन शास्त्र के ''ईश्वर'' शीर्षक अध्याय में बताया है। ''हे गुमराह प्राणी! ईश्वर को ढूँढ़ने में तुम गुमराह मत हो। यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है तो ईश्वर तेरे पास है। क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हीं ईश्वर के मंदिर हो और ईश्वर तुममें ही रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि ईश्वर सर्वव्यापी है, कण-कण में व्याप्त है तो क्या मानव के इस चलते फिरते शरीर से अलग कहीं और विचरण कर रहा है? अत: स्वयं की आत्मा को ही ईश्वर कहते हैं इसीलिये स्पष्ट किया गया है कि ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी'' यानी इतना सन्निकट होते हुए भी हमारी दृष्टि चंचल रहती है, मन उद्विग्न रहता है, जिससे लहरे शान्त नहीं बल्कि तरंगित रहती है। फलत: आत्मा का बिम्ब हमें दिखाई ही नहीं देता। चौबीस घंटे ही विधाता ने समस्त प्राणियों के लिये अनुदान दिया है। इस अवधि में अच्छे-बुरे हर प्रकार के विचार हमारे मस्तिष्क में कौंधते रहते है जितने क्षण हम अच्छे विचारों से ओत प्रोत रहते हैं, समझिये ईश्वरीय क्षण है इसके विपरीत क्षणों में हम क्रमश: दूर होते जाते हैं, यानी हमारी आत्मा अपने परमात्मा से दूर होती चली जाती है इसलिये समूह में प्रार्थना का महत्व है, एकान्त में तो है ही। समूह में प्रार्थना करके ईश्वर को अपनाने, सर्वशक्तिमान को सदैव अपने पास बिठाये रखने वाले के समूह को ही ''सर्वेश्वरी समूह'' कहा गया है जिसकी प्रत्येक ईकाई अपने आप में परिपुष्ट है। जिससे चंचल मन को प्रश्रय न देकर उसी अज्ञात, चराचर के शाश्वत सत्य की ओर हम उन्मुख होने को उद्यत रहते हैं, जिससे हमारे व्यक्तिगत एवं सामूहिक विकास यानी अध्यात्मिक शक्ति-संवर्द्धन में वृद्धि होती रहती है। अत: मन में उहापोह उठने पर आत्मा की आवाज को पहचान कर तदनुसार कार्यवाही कर अपने को विशिष्ट बनाया जा सकता है, एक सीमित अवस्था तक ही उस परमात्मा की परम कृपा को हम सम्भाल सकते है, वह भी अपने अपने पात्रता के अनुसार। इसलिए ईश्वर के तत्त्वों को शब्दों में बाँध कर उनका विश्लेषण नहीं किया जा सकता क्योंकि उनकी बनाई प्राकृतिक पदार्थों को ही समझने एवं बनाने में मानव सर्वथा असमर्थ है। अधुनातन युग आने के बावजूद एक प्राकृतिक घास या तृण को हूबहू तैयार करने की क्षमता मनुष्य में कदापि नहीं आ पायी है। दृष्टान्त स्वरूप एक हरी दूब को ही किसी वैज्ञानिक से बनाने के लिये कहा जाय तो वह उसका रासायनिक विश्लेषण कर अवश्य ही बता देगा कि अमुक-अमुक तत्त्वों से मिलकर इसकी संरचना की गयी है एवं अमुक-अमुक मात्रा में ये तत्व विद्यमान है, परन्तु यदि आप कहें कि इन्हीं अनुपात में इन्हीं तत्वों को संश्लेषित कर एक ऐसा ही प्राकृतिक तृण तैयार कर दें तो वे निरुत्तर हो जायेंगे, क्योंकि प्रकृति या ईश्वर ने मनुष्य के मस्तिष्क को भी अपनी आभा के एक अंश से ही जाग्रत विकासशील बनाया है, इसीलिये परमात्मा को गुणातीत, ज्ञानातीत एवं मायातीत की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। बड़े सरकार यानी परम पूज्य भगवान अवधूत राम जी ईश्वर की रचना को स्पष्ट करते हुए बताते हैं कि ''ईश्वर जिस तत्व से बना है, वह है करुणा, दया, सहनशीलता, मैत्री और धर्म- जो इनके आश्रय लेता है वह ईश्वर के सानिध्य को आलिंगन करता है।''

संक्षेप सार यह है कि मनुष्य अपने अनुभूति से ही उस परमतत्त्व का दिग्दर्शन कर सकता है। उस परम पवित्र शक्ति के चिन्तन, मनन अथवा अनुशीलन से एक हद तक हम परमानन्द की प्राप्ति कर सकते हैं जिसकी अवधि चाहे अल्प ही हो ''एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध! तुलसी संगत साधु की कटै कोटि अपराध।। यानी कमी का दूर होना, अपराध का प्रायश्चित होना, मन की निर्मलता आदि सोपान ही ईश्वर की प्राप्ति में सहायक है।

अबोध बालक अथवा बालिका की तुलना ईश्वर से की जाती है, क्योंकि वे सतत प्रवाहमान, सरल एवं निरहंकारी होते है, उनका हृदय सबको समान रूप से स्वागत करता है, उनके लिये अरि, मित्र में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि वे निर्मलता के प्रवाह होते हैं, मानस में गोस्वामी जी ने भी कहा है कि ''निर्मल मन-जन जो मोहि पावा; मोहि कपट छल छिद्र न भावा।''

ईश्वर को अलख-निरंजन यानी सर्वत्र व्याप्त होते हुए भी इतने व्यापक है कि दृश्यमान नहीं है, जैसे दिवाकर के मूक प्रकाश से सारी चीजें प्रकाशमान रहती है, दृष्टिगोचर रहती है, हम भी तभी देख पाते हैं, किन्तु प्रकाश किरण के एक-एक कण की अनुभूति हम करते हुए भी समझ नहीं पाते कि इन रश्मियों की संरचना कैसे हो रही है, उनके क्या अवयव हैं? अत: ईश्वर वह दुर्लभतम प्राप्ति है, जिसे प्राप्त कर लेने, अपना लेने के पश्चात् पूर्णरूपेण संतुष्टि प्राप्त हो जाती है फिर पाने को कुछ अवशेष नहीं बचता, न तो तुच्छ सांसारिक जगत माया की लोलुपता ही हमें आकर्षित कर सकती हैं इसीलिये औघड़ी वाणी में बताया गया है कि ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले से ईश्वर दूर हो जाता है। परन्तु ईश्वर की प्राप्ति के पश्चात् ऐश्वर्य पीछे भागता है। ईश्वर की प्राप्ति में चालाकी, धूर्तता, अविश्वास का कोई स्थान नहीं रहता, बल्कि ये चीजें व्यक्ति को ईश्वर से दूर करती जाती है।

अत: इस अल्प जीवन में ईश्वर की प्राप्ति का अर्थ है, सजीव एवं सार्थक जीवन यात्रा। अपने चंचल मन को, वाणी को यदि नियंत्रण में करके आत्मा के वश में कर दिया जाय तो ईश्वर की अनुभूति स्वयमेव प्राप्त होने लगती है। जहाँ से

शेष पृष्ठ दो पर

शारदीय-नवरात्र

शारदीय नौ रात्र के नव दिन-रात्रि में माँ सर्वेश्वरी की उपासना की जाती है वर्ष के ऋतु संक्रमण-काल के अन्तर्गत यह शक्ति साधना का पर्व विशेष महत्व का होता है, जिसमें हम अपने को सहज, सरल बनाकर अनुष्ठान व्रत करते हैं जिससे सहज ही हमें भगवती की असीम अनुकम्पा एवं वरदान हस्तगत होता है। उपासक, उपासिका की भावना, माँ अघोरेश्वरी के प्रति उसकी निष्ठा, उसका समर्पण ही मूल्यवान, फलदायक होता है। उसमें उथलापन, दिखावापन का लेश भी रहना सम्पूर्ण फल प्रदायी में बाधक बन सकता है। अपनी माता के प्रति अनुराग पूर्ण भक्ति ही व्यक्ति को अनुदान का अधिकारी बनाने के लिए अधिकृत है। साधुता, निर्मलता, साधक के लिए आवश्यक कारक है, धैर्य से यदि साधक अपनी साधना पूर्ण करता है तो वह अवश्य ही मनोवांछित फल पाने का अधिकारी है। यदि कहीं किंचित विलम्ब भी होता है तो धैर्य का अवलम्बन माँ के ही अवलम्बन के सदृश्य संतोषदायक सिद्ध होता है। साधना की मर्यादा, यम, नियम का पालन साधना ही अंश होता है अपने मर्यादित, आचरण से हमें अपने तप को बचाये भी रखना है, क्योंकि आमदनी से ज्यादा खर्च मनुष्य को आमदनी के बावजूद दीन-हीन बनने को मजबूर कर देता है। अत: अपने साधना के फल को संजोकर रखना भी अपनी ही जिम्मेदारी है ताकि हर समय हम माँ के वरद-हस्त ओज, तेज को बनाये रक्खें।

साधना काल यानी नवरात्रि के अन्तर्गत मन में क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, क्रोध आदि का भी हम शिकार न हो जाये। इसके लिये भी माँ से ही आर्त पुकार करते रहने चाहिए क्योंकि पात्र में छिद्र विराजमान है तो चाहे जितनी भी तेजी से हम जल भरते जाय एक न एक समय उसका खाली हो जाना अपरिहार्य है। अत: आवश्यक है कि अपने में निरन्तर परिष्कार, परिशुद्धि परोपकारिता की भावना घर करती रहे, इसकी प्रेरणा माँ की कृपा से हमें नवरात्रि में प्राप्त होती रहे तो साधक की साधना सफल होती है।

अत: नवरात्रि अवधि में नौ रात्र के पालनीय नियमों का दृष्टिगत रखते हुए, अपने को कष्ट में न रखते हुए, प्रसन्नता, श्रद्धा, विश्वास के साथ माँ भगवती की आराधना, अर्चना करने से वह फल हमें अवश्य प्राप्त होता है जिसके हम सदपात्र है, सच्ची साधना में तो सहज ही आत्म जागरण हो जाता है। प्रत्येक प्राणी में माँ की शक्ति किरणें उनमें उत्पन्न होने वाली विभिषिकाओं यथा असुरता, बुराई, दम्भ का संहार करने को माँ उद्यत है। बस आवश्यकता है, उन्हें अपने अंदर सादर आमंत्रण देने की इस संधि बेला में अभ्यन्तर के अन्तर्गत माँ की आभा को अपने रोम-रोम में व्याप्त कर धन्य होने की।

C-अघोराचार्य बाबा कीनाराम अघोर शोध एवं सेवा संस्थान् के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक **अरुण कुमार सिंह** द्वारा महादेव प्रेस, बी.3/335, रविन्द्रपुरी कॉलोनी, भेलूपुर, वाराणसी (उ0प्र0) से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पादक : चन्द्र नाथ ओझा

ग्राफिक्स : आशीष कुमार बरनवाल

☎ **0542-2277155.**

e-mail–kinaram@rediffmail.com

www.aghorpeeth.org

प्रथम पृष्ठ का शेष

ईश्वर

मानव का अपनी शक्ति सामर्थ्य जबाब देने लगती है वहीं से ईश्वरीय क्षेत्र का प्रादुर्भाव हो जाता है इसलिये आर्त पुकार, एकाग्रचित्तता को प्रभु के मिलन के लिए आवश्यक व अनिवार्य बताया गया है क्योंकि ईश्वरीय तत्व का आवेश अद्‌भूत एवं अपूर्व होता है जिसे अनुभव कर विवेकानन्द जी चेतना शून्य हो गये थे एवं माँ से साक्षात्कार, एकाकार के पश्चात् वे विश्वगुरु का स्थान प्राप्त कर गये। ईश्वर को ही आदि शक्ति के नाम से भी जाना जाता है एवं किसी मनीषी ने छंद में व्याख्या कर कहा है कि-

आदि अनादि अनामय, अविचल, अविनाशी;
अमल, अनंत, अगोचर, अज, आनंद राशि,
अविकारी, अघहारी, अकल कलाधारी;
कर्ता विधि भर्ता, हरिहर संहारकारी

यानी जगन्माता ही आदि हैं, अन्त हैं, अनन्त हैं जिनकी व्याख्या संभव ही नहीं है।

श्वेताश्वर उपनिषद् में उधृत है कि-

''परास्य शक्तिर्विविधैय श्रूयते;
स्वाभाविकी ज्ञानबल क्रिया च।।

यानी इस परमपिता परमेश्वर की शक्ति, बल, क्रियारूप का विविध वर्णन ही सुनने में आता है।

उपरोक्त उपनिषद में ही एक स्थान पर उद्धृत है-

''एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी
सर्वभूतांतरात्मा
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता
केवलो निर्गुणश्च;

यानि एक ही ईश्वर सभी में विराजमान, सर्वव्यापी, सर्वथा गुणाती एवं विशुद्ध है।

मांडूक्य उपनिषद् में भी उद्धृत है-

''एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येषः
योनिः सर्वस्य प्रभावप्ययौ हि भूतानाम''

यानी जो सबका ईश्वर है, सदा सर्वदा से सर्वज्ञता से परिपूर्ण है, वह सम्पूर्ण जगत के सृजन, पालन एवं संहार का उत्तरदायी है।

ईश्वर की प्राप्ति का एक सरल एवं बोधगम्य मार्ग है, श्रद्धा से परिपूर्ण होकर विश्वास को अडिग रखकर, तर्कों को संशयरहित करते हुए, भक्ति भाव से पूजा-अर्चना, जप-आराधना, उपासना करता है वह चाहे क्षण भर का ही क्यों न हो, वह ईश्वर के समीप होता जाता है। वह सुधापान का अधिकारी होता है एवं हर अच्छे-बुरे परिणाम को यदि मनुष्य ईश्वर की इच्छा तथा अपने कर्मों का फल मान लेता है तो वह वास्तव में ईश्वर की समीपता का अधिकारी होता है उसे सांसारिक पीड़ा, विपत्ति विचलित नहीं कर सकती, वह ''काहु न कोई सुख दु:ख कर दाता, निज कृत करम भोग सब भ्राता'' पर अडिग रहता है यानी वह प्रत्येक सृजन एवं संहार में भूतभावन शंकर के मंगलमय हाथों का ही दर्शन करता है यदि मानव वही अपने को निराश, कमजोर, भयभीत पाता है तो अवश्य जानिये वह ईश्वर से दूर है- अन्यथा उस जगत नियंता के संतान को संताप व्याप्त ही नहीं हो सकती। यद्यपि यह भी सच्चाई है कि मनुष्य स्वयं कुछ भी कर सकने में समर्थ नहीं है तब तक उस प्राणदाता का प्रकट साहचर्य न हो, क्योंकि अपने वंशजों, संतानों के पल-पल के क्रिया-कलाप को अलख-निरंजन द्वारा निरन्तर निरेखा जाता है। जैसा कि उपरिवर्णित है कि बिना दृढ़ विश्वास के ईश्वर की समीपता, उसके प्रभाव का सदुपयोग हम कर ही नहीं सकते। अत: ''जानै बिन न हो ही परतीति; बिन परतीति होहीं नहीं प्रीति'' अत: ईश्वर से प्रेम, प्रीति बढ़ाने के निरन्तर उपाय अपने अभ्यास को बढ़ाते हुए अपने अल्प जीवन के एक-एक क्षण का सदुपयोग करते हुए किया जाना सर्वथा लाभकारी एवं श्रेयस्कर है। अत: ईश्वर को निष्पक्ष, न्यायकारी मानते हुए उनके विधानानुसार जीवन यात्रा सदा सुहानी ही होगी।

सूचना

सूचित किया जाता है कि आगामी **26.10.2015, दिन सोमवार रात्रि को शरद पूर्णिमा** के अवसर पर अघोरपीठ बाबा कीनाराम स्थल के प्रांगण में श्वास रोग (दमा) तथा एलर्जी आदि के उपचार हेतु दवा वितरित की जायेगी।

जिज्ञासु व्यक्ति कृपया कार्यालय में आकर अपना नाम दर्ज करा ले।

अत: उस रात्रि को जिज्ञासु व्यक्ति बाबा कीनाराम स्थल आकर लाभ उठा सकता है।

व्यवस्थापक

अघोराचार्य बाबा कीनाराम अघोर शोध एवं सेवा संस्थान

बी-3/335, क्रीं कुण्ड, रविन्द्रपुरी, वाराणसी (उ0 प्र0)

सम्पर्क सूत्र : 0542-2277155, 9794487878

''दानी-आष्टक''

मानव तन पर मरगुलपुर में चमक उठा औघड़ तारा;
माता-पिता को धन्य बनाकर बढ़े पले शिव अवतारा;
मैलानी के ''दानी जी'' की सभी करैं जय-जयकारा;

गया दास जी से प्रकाश ले झट पहुँचे गुरू के द्वारा
गंगा तट पे जहाँ थी बहतीं शिव अघोर अविरल धारा,
भक्त प्रवर की गुरू-भक्ति से द्रवित हो माँ गुरू स्वीकारा,
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

आरक्षी पद को ठुकराये, गुरू आहूत जीवन सारा;
काली मठ जा दर्शन करके आये जग तारनहारा,
गौराड़ग प्रभु सा कीर्तन करते पर-पीड़ा दुख को झारा
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

बालक ध्रुव सा नंगे पांव पैदल चलते बारम्बारा,
गुरू श्री चरण में कमल चढ़ाये मिली सिद्धि अपरम्पारा;
कर ले दीप हुए शरणागत, साष्टांग औघड़ धारा
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

हिंसक व्याघ्र ने दर्शन पाया दिया त्याज्य हिंसा सारा;
बसहा में गुरू-शक्ति भरी थी किया क्लेश से छुटकारा;
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

पथ भटकें व दस्यु जनों की प्रवृत्ति आसुरी संधारा,
सरल, सादगी के प्रतिमूर्ति सदा आन्दित करतारा,
सूक्ष्म भारीर से सेवारत हैं जग कल्याण का ध्वज धारा;
संस्कृति अक्षुण रखकर अपनी तड़क-भड़क को ललकारा,
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

श्रद्धानवत प्राणी जन पाते, सुख सरिता का संसारा;
हर पल दृष्टि रहे प्रभु सब पर कर्म ना हो किंचित खारा
जन्म-जन्म के पाप की गठरी भूस्मिभूत अहंकारा,
मैलानी के ''दानी जी'' की.....।

शोक संवेदना

महाराजश्री बाबा कीनाराम जी एवं माँ सर्वेश्वरी के श्रद्धालु भक्त श्री योगेन्द्र सिंह निवासी ग्राम-लोधापुर, पोस्ट-पल्हना, जिला-आजमगढ़ (शाखा पल्हना) का शिवलोकगमन दिनांक 9 अक्टूबर 2015 को हो गया। संस्थान की ओर से दिवंगत आत्मा की शान्ति तथा सद्गति के लिये बाबा कीनाराम की विनीत प्रार्थना करते हैं तथा उनके शोक संतृप्त परिवार के प्रति अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करते हैं।

शील का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है

पृष्ठ चार का शेष

जिसे घर कहते हैं वह सराय-धर्मशाला के समान है जहाँ हम टिके हुए हैं। इस घर के प्रति हमें बहुत बड़े अभिमान, ममता और लगाव है जो हमारी चित्त की शुद्धता और महापुरुषों के चरणों में जाने के मार्ग में बहुत बड़ा अवरोध है। करबद्ध होकर प्रार्थना करने का मतलब है दस इन्द्रियों को उनके विषयों से सिकोड़ कर अन्तर्मुखी कर लेना। माँ भगवती हमें दिव्य चक्षु दें, हमें ऐसी वाणी कण्ठ दें कि कोई कैसा हूँ हो उसके लिये मेरे मुख से अप्रिय शब्द न निकले और यदि निकले भी तो निश्छल और उसके लिये कल्याणप्रद, ठीक वैसे ही जैसा पिता पुत्र के लिये व्यवहार में लाता है जो स्नेहप्रद होता है और पुत्र के लिये कल्याणप्रद होता है। उसी में हमारा भी कल्याण होगा। इसलिये इन्द्रियों से जो अपराध होते रहते हैं। उनसे निवृत्त होना होगा। इसी को अष्टांग योग कहते हैं। योग कोई दूसरी वस्तु नहीं है।

पूजा के पहले पूजा की भावना जैसे ही होती है तत्क्षण ही पूजा सम्पन्न हो जाती है। बाद में धूप-दीप दिखाना, अक्षत, चंदन, पुष्प, अर्घ्य इत्यादि समर्पित करना मात्र औपचारिकता ही रह जाती है। यदि चित्त में उपासना, प्रार्थना करने, शक्ति अर्जित करने के भाव उत्पन्न होते हैं तो माँ भगवती दिशाओं से आकर हममें विराजमान हो जाती हैं। ऐसा होने पर भासने लगता है किन्तु जो व्यक्ति छोटा या बड़ा कुकृत्य में संलग्न है उसे यह नहीं भासेगा। छोटे और बड़े पापों के बीच कोई फर्क नहीं है चूँकि दोनों ही बदबू करते हैं और पहले अपने आपको बदबू करते हैं। यदि हम किसी को बुरा कहते है तो तीन उंगलियाँ अपनी ओर ही मुड़ जाती है। हमें अपने स्वभाव में लीन रहना चाहिये। हमें निष्क्रिय जीवन नहीं जीना चाहिये चूँकि वह दुःख देता है, वेदना प्रदान करता है। आप चाहे तो जीवन को अच्छा बना सकते हैं बहुत से दम्भी लोग अपने खूँटे में बंधे हैं जिससे अलग होकर नहीं देखना चाहते। जो अलग होकर देखता सुनता है वही देखता है। प्राणमयी भगवती सबमें है। इनसे बहुत तेज, बल और मुदिता उपलब्ध होती है। ऐसे व्यक्ति का हर कार्य सुगम, सहज और सरल सा होता है। यह उपासना हमें यह भी बतलाती है कि अपराध से बचें, श्रद्धा रखें तथा शालीनता एवं शील बरते। जो ऐसा नहीं करता है वह अपने आपको शोक, मोह के गर्त में डालता है। आज मैंने एक स्त्री को चार छोटे बच्चों के साथ देखा। वह बहुत क्लेश पाले हुए है। मोहवश का वह यह सोचती है कि ये बच्चे उसे बुढ़ापे में सुख पहुँचायेंगे। शतचण्डी में इसी मोह के बारे में मेधा ऋषि द्वारा सुरथ और समाधि को समझाया गया है। सुरथ राज्यच्युत होकर अरण्य में मेधा ऋषि के आश्रम में आते हैं। समाधि वैश्य भी पुत्रादि द्वारा धन-धान्यादि का अपहरण कर तिरस्कृत और निष्कासित होकर उसी आश्रम में आते हैं। दोनों का अपने राज्य और पुत्रादि के प्रति मोह बना हुआ है। बाद में आराधना की जाने पर महामाया उन्हें मोह से विमुक्ति प्रदान करती हैं। इसी तरह आजकल मनुष्य के बच्चे उत्पन्न होते हैं जो पंख जमने पर उड़ जाते हैं और तब तक हर तरह से वेदना देते हैं। एक बच्चा के बाद दूसरा बच्चा और फिर तीसरा बच्चा पैदा करना महा अन्याय है। ये बच्चे बाद में आपस में लड़ेंगे। उनके पिंडदान से पिता की आत्मा का उद्धार नहीं होगा। इसलिये महामाया से प्रार्थना करते हैं कि उनके मोह से ग्रसित होने से जो दुःख होता है जिन दूषित परिणामों से वेदनाग्रस्त रहते हैं, उनसे त्राण पाने के लिये अपने चरणों के प्रकाश से वाणी और हृदय को शुद्ध करें ताकि हमारा अगला जन्म अच्छे कुल, वंश देश और महापुरुषों के सान्निध्य में हो। पिशाच को अच्छा पानी पीने के लिये नहीं प्राप्त होता। पिशाच के सदृश्य ही बहुत से मनुष्य हैं जिन्हें स्वच्छ जल नहीं प्राप्त होता और मिलने पर भी उनका यह अधिकार नहीं है कि वह उन्हें प्राप्त हो सके। इस क्षेत्र के लोग खेत रहते हुए भी गेहूँ, सब्जी इत्यादि नहीं उगा सकते चूँकि वे मवेशियों को चरने के लिये खुला छोड़ देते हैं। ऐसा इसलिये होता हैं कि वे इसके अधिकारी नहीं है। उनको अधिकार नहीं है। यह बात उनकी बुद्धि में आती ही नहीं। अन्य क्षेत्रों में भी इसी प्रकार से दुश्शील और कुकृत्यकाया प्राणी है। वे संयोगवश देवी देवता के सामने से गुजर जाते होंगे और इसी के परिणामस्वरूप जिन्दा है।

''मति कीरति गति भूति भलाई जो जेहि जतन जहाँ तक पाई सो जानब सत्यसंग प्रभावू।''

एक वेश्यागमी था। वह रामनगर से काशी एक वेश्या के यहाँ जा रहा था। उसे देने के लिये उसने बड़े चाव एवं यत्न से एक पुष्प अपने पास रखा था। वह पुष्प संयोगवश उसके हाथ से छूट कर गंगाजी में गिर गया। जल में उसे पकड़ने के लिये बहुत प्रयास करने पर भी जब वह पुष्प उस वेश्यागामी के हाथ नहीं लगा तब उसने ''शिवायनमः'' कहकर उसे गंगा जी को अर्पित कर दिया। जब वह नरक में जाने लगा तो उसे उस पुष्प को शिव को अर्पित करने के फलस्वरूप कुछ दिनों तक स्वर्गवास प्राप्त हुआ। तब उसकी चेतना जागी कि यदि एक पुष्प शिव को अर्पण करने से स्वर्गवास प्राप्त हुआ तो यदि वह नियमित रूप से आराधना, पूजा करता तो उसका कितना ही अच्छा फल मिलता। बहुत से लोग महात्माओं से अलग-थलग रहते हैं। कैसे जीना चाहिये, हमें यही सीखना है। इसी के लिये भगवती से विनय भी किया जाता है। अपराध क्षमा नहीं होता है। उसे तो भोगना ही पड़ता है, किन्तु आज से हम सुकर्म की ओर बढ़े। ऊपर की सरकार भी अपराधी को दण्ड देती है। इससे बचने के लिये, सज्जनों-सन्तों के सान्निध्य में रहें। अपने आप पर दया करे और अपनी आत्मा को पद्दलित होने से बचावें और ऐसी सुबुद्धि प्राप्त करने के लिये महामाया की आराधना करें।

शील का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी का आशीर्वचन

धर्म बन्धुओं!

शक्ति के अर्जन करने वाले लोग आराधना में लगे हुए हैं। अपने यहाँ के मित्रों से कहना है श्रद्धा के साथ शील भी होना चाहिये। बगैर शील के शालीनता कोई महत्व नहीं रखती। जब हम आराध्य के सामने खड़े होते हैं या बैठे रहते हैं तो शील तो चाहिये ही, साथ ही साथ हमारी इन्द्रियों, मन और प्रत्येक अंग की चंचलता भी समाप्त हो जानी चाहिये। तभी हम आर्य सत्य की शुद्धता प्राप्त कर सकेंगे, आदर्श साधक बन सकेंगे। न्यायालय में वकील लोग गाउन पहन कर उपस्थित होते हैं चूँकि बगैर विहित पोशाक धारण किये वे न्यायाधीश के समक्ष हाजिर नहीं हो सकते। उसी तरह से जब हम अपने पूज्य आराध्य देव के सामने विशेष अनुष्ठान में उपस्थित होते हैं तो हमें उपर्युक्त आवश्यक सत्य पूरी करनी होगी। हमारा एक वेश होना चाहिये। यह नहीं कि कभी धोती पहन ली और कभी पायजामा। यह दुश्शील है। जो साधक-उपासक हैं उनकी एक वेशभूषा होती है। उस वेशभूषा में जब वे आराधना पूजा के लिये खड़े होते या सन्नद्ध होते हैं तो उन्हें गौरव की अनुभूति होती है। जब हम लंगोट धारणा करते हैं तो चित्त में सुकृत्य का भान होता है। जब हम बेतुके ढंग से, साधु के लिये अशोभनीय वस्त्र धारण करते हैं तो यह साधु के लिये शीलहीन है। जो एकाकी होता है, एकान्त में रहता है, एकान्तप्रिय होता है, उसके चित्त में प्रसन्नता बनी रहती है, हरेक तरह से वह अपने में प्रसन्नता का अनुभव करता है। जब वह भीड़ में बैठता है और उसे उर्द्ध वायु या उर्द्ध वायु छोड़ना होता है तो उस पर प्रतिबन्ध लग जाता है। यह प्रतिबन्ध दूषित वातावरण का सृजन करता है। इसीलिये कहा गया है कि पूजा या साधना बाह्य और अभ्यन्तर दोनों से एकाकी होनी चाहिये। एकान्त भी शील है और एकान्तशील का भी सेवन होना चाहिये। उसका बहुत ही बड़ा सुख है, आनन्द है, स्वतन्त्रता है। उससे अनेक लाभ है। ओज बढ़ जाता है। ऐसा व्यक्ति सज्जनों, महापुरुषों के मापदण्ड से तौलता है। बहुत से प्राणी चोरों, कुकृत्यकर्मियों के मापदण्ड से तौलते हैं। वे बहुत ही दुःख, क्लेश पाते हैं। जुआ के कारण महाभारत हुआ। पाण्डवों ने अपनी पत्नी तक को दांव पर लगाया। परिणामतः वे तिरस्कृत होकर मारे-मारे फिरे। धन, जन तो हार ही गये, पत्नी तक को बंधक रख दिये। कुकृत्य से सैकड़ों स्त्रियाँ विधवा हो गई। ऐसी स्थिति में घर में कलह होता है। भय के कारण जीवन दुसह हो जाता है। भयभीत रहता है, त्रस्त रहता है, उसका जीवन अभिशाप बन जाता है। अतः हमें श्रद्धा के साथ शील का भी पालन करना चाहिये। बड़ों के सामने कैसे खड़ा होना है, कैसे बोलना है, इसका ख्याल रखना होगा। उनके सामने उपस्थित होने, उनसे बातचीत करने के पूर्व यह विचार करना चाहिये कि वे ध्यानमग्न तो नहीं है। किसी अन्य से वार्तालाप तो नहीं कर रहे हैं। उस समय यदि हम उचित अनुचित का विचार किये बगैर उनके सामने आकर बोलने का प्रयास करते है तो यह शील का निरादर हैं, यह दुश्शील है। अपने इष्ट के सामने आने के पूर्व यह जरूर देखना और सोचना चाहिये कि वे अपने इष्ट के सामने अनुनय-विनय और साधना में तो नहीं लगे हुए है। साधना इष्ट के सामने समकालीन बैठने के सदृश्य है। यदि हमारा अधिकार है तो शील का पालन करना हमारा कर्त्तव्य भी है। हम क्या पहने, क्या और कितना बोले चाले और भोजन करे प्रत्येक कार्य का मात्रज्ञ होना होगा। जो मात्रज्ञ होता है उसका स्वास्थ्य और मनन, चिन्तन उच्चकोटि का होता है, जीवन सुखमय होता है और वह दीर्घायु होता है। अन्यथा देखा जाता है, बहुत कम लोग ही 60 वर्ष, 70 वर्ष, 80 वर्ष या 100 वर्ष तक जीते हैं। सामान्यतः, अच्छा खान पान और बगैर तनाव का जीवन होने से हमारी आयु 24000 दिनों तक की हो सकती है। इतने अल्प समय में हम क्या कर सकते है? हम 48000 बार भोजन कर सकते हैं, 80 वसन्त, बरसात, गर्मी इत्यादि के मौसम और होली, दीवाली देख सकते हैं और वह भी तब जब हम निरोग रहे, हमारी इन्द्रियाँ स्वस्थ रहीं और हमारा जीवन कुकृत्यों और अपराध-कर्मों से मुक्त रहा। हम लोगों की थोड़ी ही आयु रह गई है। अतः यदि हम महात्माओं के संकेत पर महापुरुषों की वाणी एवं सज्जनों द्वारा बताई गई पंगडंडियों पर नहीं चले तो कोई संभावना नहीं है कि हम लोग अगले जन्म में मानव योनि में ही जन्म लेंगे। मानव शरीर में चैतन्य, बोध और ज्ञान है। यदि इस शरीर को पाकर भी हम भवसागर को पार नहीं कर पायेंगे। तो हमारा जीवन एक अनभिज्ञ व्यक्ति की भांति होगा। ऐसा जीवन ठीक उसी प्रकार का होगा जिसमें एक महापुरुष का दर्शन पाकर भी हम उन्हें न पहचान पावें।

हाथ-पांव नासिका, वाणी से अपराध होता है। जहाँ जोन से अपने को ग्लानि होती है और दूसरों को भी ग्लानि होती है वहाँ पांव का जाना अपराध है। जो हमें नहीं करना चाहिये वह हाथ से करते हैं, यथा, दूसरों की वस्तु छीन लेते हैं, कपट लेते हैं या जो ऐसे कर्म करते हैं उनसे हाथ मिलाते हैं यह हाथ का अपराध है। ठीक इसके विपरीत यदि हम ऐसे व्यक्ति से हाथ मिलाते हैं जो बराबर दूसरों को देते ही रहते हैं तो हम अपने हाथ से सुकृत्य करते हैं। बच्चे के हाथ में यदि कींच लगा हो तो माँ उसे मिष्ठान्न तब तक नहीं देती जब तक गन्दगी साफ नहीं हो जाती या वह उसे पोछ नहीं लेता। अतः यदि हमारा हाथ गन्दा रहा तो महामाया का प्रसाद कैसे प्राप्त हो पायेगा।

श्रवण से अपराध कैसे होता है? वह दूसरों की बातें सुनता है जिससे बुद्धि में, चित्त में तनाव होता है। ऐसे लोगों से मिलना-जुलना, बातचीत करना, दुःख की ओर ले जाता है। सज्जनों के साथ वार्तालाप से चित्त में नवीनता आती है, आह्लाद होता है। इसका एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक बहुत ही धर्मात्मा राजा थे। उनके पुरोहित स्वर्ग में आया जाया करते थे। राजा ने पुरोहित से कहा कि मैं इसी शरीर से स्वर्ग में जाना चाहता हूँ। पुरोहित ने गुरु से पूछा तो उन्होंने कहा- यज्ञ करो और सुनिश्चित करो कि इस यज्ञ में किसी को भी वेदना न हो चाहे वे व्यवस्था में सम्बन्धित हो तथा अतिथि हों या अन्य उपस्थित व्यक्ति हों। यज्ञ प्रारम्भ हुआ। उसमें भगवान चाण्डाल के रूप में पहुँचे और राजा से खाना मांगा। राजा ने कहा-जाओ, खाओ। लोगों ने उसे चाण्डाल को धत्कार दिया। वह राजा के पास तीन चार बार आया और राजा ने उसे तीन चार बार ऐसा ही कहा। जब आखिरी बार लौट कर उस चाण्डाल ने फिर राजा से भोजन की याचना की तो रंज होकर उन्होंने उसे कहा कि- घोड़ा की लीद है खाओ। यज्ञ की समाप्ति होने पर पुरोहित यज्ञ के परिणाम की जानकारी प्राप्त करने के लिये स्वर्ग लोक गये तो उन्होंने वहाँ घोड़े की लीद देखी और लौटकर राजा को इसकी जानकारी दी। तब राजा को चाण्डाल के साथ घटी घटना याद आ गयी जिसे उन्होंने पुरोहित को बतलाया और अपराध के निराकरण का उपाय पूछा। स्वर्ग लोक जाकर पुरोहित ने निदान पूछा। स्वर्ग लोक के अधिकारियों ने बतलाया कि जब राजा की निन्दा होने लगेगी तो उक्त पाप से छुटकारा होगा। यह जानकर राजा ने एक योजना बनाई। एक दिन प्रातः काल ही उन्हें अपनी ही कन्या के गृह के चोर दरवाजे से निकलते एक मेहतरानी ने देखा और राजा के चरित्र पर दोषारोपण करते हुए उसने चारों ओर इसकी चर्चा की। लोगों में राजा के चरित्र की कटु आलोचना हुई। तब पुरोहित ने स्वर्ग लोक में जाकर देखा कि घोड़े की लीद का ढेर घट कर बहुत कम बच गया था। उन्होंने राजा को इस स्थिति से अवगत कराया। राजा ने पुरोहित को कहा कि अब पता लगावें कि कौन ऐसे व्यक्ति बच गये है जिन्होंने राजा के आचरण पर टीका टिप्पणी नहीं की थी। खोज करने पर एक कुम्हार दम्पत्ति का पता चला जिन्होंने राजा की निन्दा नहीं की थी। उन्हें दरबार में बुलाया गया और राजा ने कुम्हार को एक थप्पड़ मारा जिस पर कुम्हारिन ने कहा कि राजा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई है तदुपरान्त पुरोहित ने स्वर्ग लोक जाकर देखा तो पाया की घोड़े की लीद का ढेर समाप्त हो गया था।

हम श्रवण से, वाणी से, चक्षु से भी अपराध करते हैं। वाणी और नेत्र के बीच की दूरी बहुत अधिक है। ये जो हमारे अवगुण हैं उनका त्याग करना चाहिये। इनसे हममें ओछापन आ जाता है। यदि आप अपने कर्मचारियों, बन्धु-बान्धवों से कम मिलना-जुलना करते हैं तो लोग आपको गम्भीर एवं ओजस्वी मानेंगे। यदि हम वाचाल हो जायेंगे और अनेक तरह के कुकृत्यों की व्याख्या करने लगेंगे तो हमारा तेजबल क्षीण होगा, ओज का ह्रास होगा। यदि हमें ओज प्राप्त करना है तो जिनके साथ हमें काम करना है उनसे भी कम ही बोलें।

जिसका हाथ गन्दा है उसे माता मिष्ठान नहीं देगी। जो वयस्क हो गये है उनके हाथ यदि गन्दा है तो वे उनके सारे वस्त्र को ही गन्दा किये रहेंगे, अरुचि पूर्ण बनाये रहेंगे वे जिन जिन वस्तुओं का स्पर्श करेंगे वे सबके सब खराब हो जायेंगे, यहाँ तक कि सोना भी कोयला के समान हो जायेगा। ऐसे हाथों से गुरु-प्रदत्त मंत्रों का जप नहीं किया जा सकता। मैं स्वयं 2-3 दिनों तक भूखा रहा था। शनैः शनैः हमने हाथों से जाप किया, हाथों को जोड़कर प्रार्थना करने का अभ्यास किया। इससे नम्रता आ जाती है। हमलोग

शेष पृष्ठ तीन पर

अघोर सूत्र

☞ देवी देने वाली होती है, दिलाने वाली होती है, दिये-दिलाये को छीन लेने वाली होती है। उसे ही शक्ति कहते हैं, पौरुष कहते हैं, लोहा कहते हैं। सोने की रक्षा करने वाला, उसे लोहा कहते हैं।

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी